

मुणिणो पावंति णिव्वाणं

- डॉ. आशीष जैन आचार्य, शाहगढ़
(राष्ट्रपति सम्मानित)

- **प्रस्तावना** - भारतीय एवं पाश्चात्य दर्शन प्रायःकर आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार करते हैं। आत्मज्ञान को लेकर सभी दर्शन गंभीर हैं। यदि ऐसा कहा जाए कि आत्मज्ञान के अन्वेषण के लिए दर्शनों की अवधारणा एवं वैचारिक क्रान्तियाँ हुई हैं तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। आत्मा का स्वरूप अजर-अमर-चेतन-अमूर्तिक प्रायः सभी दर्शन समान रूप से ग्रहण करते हैं। आत्मा के पूर्वजन्म, पुनर्जन्म एवं मुक्त होने पर जन्म-मरण से छुटकारा प्राप्त हो जाने; इन बिन्दुओं पर सभी दर्शन एकमत हैं। अर्थात् आत्मस्वातन्त्र्य के लिए मोक्ष की सत्ता को स्वीकार किया और मोक्ष प्राप्ति के लिए तत्त्वज्ञान, भेदविज्ञान परम आवश्यक है, इसे भी स्वीकार किया है। अतः साध्य में कोई विवाद नहीं है केवल साधन में विवाद है। जैन दर्शन कहता है - सम्यक् दर्शन-ज्ञान-चारित्र्य इन तीनों की एकता ही मोक्षमार्ग है। इस रत्नत्रय को धारण करने के लिए साधन रूप में मनुष्य भव होना आवश्यक है। मनुष्य भव में संसार-शरीर-भोगों से विरक्ति के भावपूर्वक नग्न दिगम्बर जैनेश्वरी दीक्षा धारण कर अपने कर्मों के क्षय के लिए सतत अभ्यास करते रहना होगा। तब कहीं जाकर इस रत्नत्रय में स्थापित हो पायेंगे और निर्वाण की प्रक्रिया को पूरी कर सकेंगे। निर्वाण प्राप्ति केवल सभी परिग्रहों से रहित परम विशुद्ध अवस्था दिगम्बरत्व नग्नत्व स्वरूप मुनि मुद्रा ही है। इससे भिन्न मुक्ति संभव नहीं है। इसी क्रम में, हम अपने इस लेख में आचार्यश्री कुन्दकुन्द स्वामी द्वारा विरचित समयसार ग्रन्था धिराज में वर्णित स्वरूप मुणिणो पावंति णिव्वाणं के आधार पर मुनि ही निर्वाण प्राप्त करते हैं, इस कथन की सिद्धि कर रहे हैं।

आध्यात्मिक चर्या के धनी आचार्यश्री विशुद्धसागरजी महाराज जिन्होंने समयसार को अपने जीवन में जीकर जनसामान्य को अध्यात्म से जोड़कर ज्ञान-ध्यान-तपोरक्त के भाव में प्रवृत्त कराने के लिए सार्थक प्रयास किया है। यह आलेख पूज्य आचार्यश्री विशुद्धसागरजी महाराज उच्चरित समयसार देशना का आधार एवं सीमांकन कर लिखा जा रहा है। अतः सुधीजन इस लेख को रूचिपूर्वक पढ़कर आनंद प्राप्त करें और यदि कहीं मेरे क्षयोपशम की कमी के कारण कोई त्रुटि हो रही है तो उसके संशोधन के लिए कहे या संशोधन कर ही पढ़ें।

- **मुनि का लक्षण** - पंच महाव्रत पंच समिति आदि 28 मूलगुणों रूप सकल चारित्र को पालने वाला निर्ग्रन्थ मुनि ही साधु संज्ञा को प्राप्त है। परंतु उसमें भी आत्म शुद्धि प्रधान है, जिसके बिना वह नग्न होते हुए भी साधु नहीं कहा जा सकता। पार्श्वस्थ, कुशील आदि पाँच भेद ऐसे ही कुछ भ्रष्ट साधुओं का परिचय देते हैं। आचार्य, उपाध्याय व साधु तीनों ही साधुपने की अपेक्षा समान हैं। अंतर केवल संघकृत उपाधि के कारण है।

मननमात्रभावतया मुनिः।¹

मननमात्र भाव स्वरूप होने से मुनि है।

मुनयोऽवधिमनःपर्ययकेवलज्ञानिनश्च कथ्यन्ते।²

अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी और केवलज्ञानियों को मुनि कहते हैं।

श्रमण, संयत, ऋषि, मुनि, साधु, वीतराग, अनगार, भदंत, दांत, यति ये एकार्थवाची हैं।

- **निर्वाण का लक्षण** - निर्वाण शब्द की व्युत्पत्ति है - निर्क्वा+क्तः - निर्वाणोऽवाते इति निष्ठातस्य नः। मुक्तः। निर्वृत्तिः। अपवर्गः। निर्वाण का अर्थ है अंत, समाप्ति, परमपद, अपवर्ग, मोक्ष, मुक्ति, परमधाम आदि। एक अन्य व्युत्पत्ति के अनुसार निर्वाण शब्द की व्युत्पत्ति है - वाण, अर्थात् 'दुर्गन्ध', + निर् + अर्थात् मुक्तिः पीड़ादायक कर्म की दुर्गन्ध से मुक्ति। निर्वाण शब्द के अन्य अनेक अर्थ हैं - बुझा हुआ (दीपक अग्नि, आदि), अस्त, डूबा हुआ, शांत, धीमा पडा हुआ, मृत, मरा हुआ, निश्चल, शून्यता को प्राप्त, बिना बाण का, निर्वाण, बुझना, ठंढा होना, समाप्ति, न रह जाना, अस्त, गमन, डूबना, हाथी को धोना या नहाना, संगम, संयोग, मिलन, समाप्ति, पूर्णता, मुक्ति, मोक्ष आदि।

यहाँ बौद्ध दर्शन का अभिधर्म-महाविभाषा-शास्त्र, जो एक सर्वस्तवादी विचार है, में इस शब्द के संस्कृत से उत्पन्न सभी संभावित अर्थों का वर्णन है:

निर्वाण शब्द निः (निर्) और वाण की संधि से बना है। निर् का अर्थ है - अलग होना, दूर होना या उसके बिना और वाण (पालि: वाति) का अर्थ है मुक्ति। जैसे बहती हवा और सूँघना, इत्यादि।

¹ समयसार / आत्मख्याति/151

² चारित्रसार/46/5

- वाण, का तात्पर्य है पुनर्जन्म का पथ, + निर्, का तात्पर्य है छोड़ना या पुनर्जन्म के पथ से दूर होना.
- वाण, अर्थात् 'दुर्गन्ध', + निर्, अर्थात् मुक्ति: पीड़ादायक कर्म की दुर्गन्ध से मुक्ति.
- वाण, अर्थात् घने वन, + निर्, अर्थात् छुटकारा पाना = पांच स्कंधों के घने वन से स्थाई मुक्ति (पंच स्कंध), या मोह, द्वेष तथा माया (राग, द्वेष, अविद्या) या अस्तित्व के तीन लक्षणों (अस्थायित्व, अनित्य, असंतोष, दुःख, आत्मविहीनता, अनात्मन) से मुक्ति.
- वाण, अर्थात् बुनना, + निर्, अर्थात् गांठ=कर्म के पीड़ादायी धागे की गांठ से मुक्ति.

यहाँ प्रकृत से निर्वाण शब्द का अर्थ मुक्ति अथवा मोक्ष से है।³ दिगम्बर जैन आचार्यश्री कुन्दकुन्द स्वामी नियमसार ग्रन्थ में कहते हैं -

णवि दुक्खं णवि सुक्खं णवि पीडा णेव विज्जदे बाहा ।
 णवि मरणं णवि जणणं तत्थेव य होइ णिव्वाणं ।179 ।
 णवि इंदिय उवसग्गा णवि मोहो विम्वियो ण णिहा य ।
 ण य तिण्हा णेव छुहा तत्थेव य होइ णिव्वाणं ।180 ।
 णवि कम्मं णोक्कम्मं णवि चिंता णेव अट्टरुद्दाणि ।
 णवि धम्मसुक्कझाणे तत्थेव य होइ णिव्वाणं ।181 ।⁴

जहाँ दुःख नहीं है, सुख नहीं है, पीड़ा, बाधा, मरण, जन्म कुछ नहीं है वहीं निर्वाण है।179।
 जहाँ इंद्रियाँ, मोह, विस्मय, निद्रा, तृषा, क्षुधा, कुछ नहीं है वहीं निर्वाण है।180। जहाँ कर्म और नोकर्म, चिंता, आर्त व रौद्रध्यान अथवा धर्म व शुक्लध्यान कुछ नहीं है, वहीं निर्वाण है।181।

निर्वाणं विनाशः, तथा प्रयोगः निर्वाणः प्रदीपो नष्ट इति यावत् । विनाशसामान्यमुपादाय
 वर्तमानोऽपि निर्वाणशब्दः चरणशब्दस्य निर्जातकर्मशातनसामर्थ्याभिधायिनः

³ विशेष— निर्वाण शब्द का प्रयोग सांख्य, न्याय, वैशेषिक, योग, मीमांसा (पूर्व) और वेदांत में क्रमशः मोक्ष, अपवर्ग, निःश्रेयस, मुक्ति या स्वर्गप्राप्ति तथा कैवल्य शब्दों का व्यवहार हुआ है। जबकि जैन और बौद्ध दर्शन इस निर्वाण शब्द की विशेष व्याख्या की गई है। । बोधिसत्व नागार्जुन ने माध्यमिक सूत्र में लिखा है कि 'भवसंतति का उच्छेद ही निर्वाण है, अर्थात् अपने संस्कारों द्वारा हम बार-बार जन्म के बंधन में पड़ते हैं इससे उनके उच्छेद द्वारा भवबंधन का नाश हो सकता है । रत्नकूटसूत्र में बुद्ध का यह वचन है: राग, द्वेष और मोह के क्षय से निर्वाण होता है । बज्रच्छेदिका में बुद्ध ने कहा है कि निर्वाण अनुपधि है, उसमें कोई संस्कार नहीं रह जाता । माध्यमिक सूत्रकार चंद्रकीर्ति ने निर्वाण के संबंध में कहा है कि सर्वप्रपंचनिवर्तक शून्यता को ही निर्वाण कहते हैं ।

⁴ नियमसार/179-181

प्रयोगात्मकर्मविनाशगोचरो भवति। स च कर्मणां विनाशो द्विप्रकारः, कतिपयः प्रलयः सकलप्रलयश्च। तत्र द्वितीयपरिग्रहमाचष्टे।⁵

निर्वाण शब्द का 'विनाश' ऐसा अर्थ है। जैसे—प्रदीप का निर्वाण हुआ अर्थात् प्रदीप नष्ट हो गया। परंतु यहाँ चारित्र में जो कर्म नाश करने का सामर्थ्य है उसका प्रयोग यहाँ (प्रकृत में) निर्वाण शब्द से किया गया है। वह कर्म का नाश दो प्रकार से होता है—थोड़े कर्मों का नाश और सकल कर्मों का नाश। उनमें से दूसरा अर्थात् सर्व कर्मों का विनाश ही यहाँ अभीष्ट है।

स्वाधीनातीन्द्रियरूपपरमज्ञानसुखलक्षणं निर्वाणम्।⁶

स्वाधीन अतीन्द्रियरूप परमज्ञान व सुख लक्षण निर्वाण है।

नय - 'सकलादेशः प्रमाणाधीनो विकलादेशः नयाधीनः'।⁷

सकलादेश प्रमाण का विषय है और विकलादेश नय का विषय है।

अथवा ज्ञाता के अभिप्राय को नय कहते हैं। अथवा श्रुतज्ञान के विकल्प को नय कहते हैं। अथवा अनन्त धर्मात्मक पदार्थ के किसी एक धर्म को मुख्य और अन्य धर्मों को गौण करने वाले विचार को नय कहते हैं।⁸

⁵ भगवती आराधना / विजयोदया टीका/11/53/20

⁶ प्रवचनसार / तात्पर्यवृत्ति/6/8/9

⁷ स.सि., 1/6/24

⁸ अनन्त धर्मात्मक होने के कारण वस्तु बड़ी जटिल है। उसको जाना जा सकता है, पर कहा नहीं जा सकता। उसे कहने के लिए वस्तु का विश्लेषण करके एक-एक धर्म द्वारा क्रम पूर्वक उसका निरूपण करने के अतिरिक्त अन्य उपाय नहीं है। कौन धर्म को पहले और कौन को पीछे कहा जाये यह भी कोई नियम नहीं है। यथा अवसर ज्ञानी वक्ता स्वयं किसी एक धर्म को मुख्य करके उसका कथन करता है। उस समय उसकी दृष्टि में अन्य धर्म गौण होते हैं पर निषिद्ध नहीं। कोई एक निष्पक्ष श्रोता उस प्ररूपणा को क्रम-पूर्वक सुनता हुआ अंत में वस्तु के यथार्थ अखंड पर्यायार्थिक नय सामान्य निर्देश व्यापकरूप को ग्रहण कर लेता है। अतः गुरु-शिष्य के मध्य यह न्याय अत्यंत उपकारी है। अतः इस न्याय को सिद्धांत रूप से अपनाया जाना न्याय संगत है। यह न्याय श्रोता को वस्तु के निकट ले जाने के कारण 'नयतीति नयः' के अनुसार नय कहलाता है। अथवा वक्ता के अभिप्राय को या वस्तु के एकांश ग्राही ज्ञान को नय कहते हैं। संपूर्ण वस्तु के ज्ञान को प्रमाण तथा उसके अंश को नय कहते हैं।

अनेक धर्मों को युगपत् ग्रहण करने के कारण प्रमाण अनेकांत रूप व सकलादेशी है, तथा एक धर्म के ग्रहण करने के कारण नय एकांत रूप व विकलादेशी है। प्रमाण ज्ञान की अर्थात् अन्य धर्मों की अपेक्षा को बुद्धि में सुरक्षित रखते हुए प्रयोग किया जाने वाला नय ज्ञान या नय वाक्य सम्यक् है और उनकी अपेक्षा को छोड़कर उतनी मात्र ही वस्तु को जानने वाला नय ज्ञान या नय वाक्य मिथ्या है। वक्ता या श्रोता को इस प्रकार की एकांत हठ या पक्षपात करना योग्य नहीं, क्योंकि वस्तु उतनी मात्र है ही नहीं। यद्यपि वस्तु का व्यापक यथार्थ रूप नयज्ञान का विषय न होने के कारण नयज्ञान का ग्रहण ठीक नहीं, परंतु प्रारंभिक अवस्था में उसका आश्रय परमोपकारी होने कारण वह उपादेय है। फिर भी नय का पक्ष करके विवाद करना योग्य नहीं है। समन्वय की दृष्टि से काम लेना ही नयज्ञान की उपयोगिता है।

1. **निश्चय नय** - गुण-गुणी में तथा पर्याय-पर्यायी आदि में भेद न करके अभेद रूप से वस्तु को ग्रहण करने वाला नय निश्चयनय कहलाता है।

2. **व्यवहार नय** - गुण-गुणी में, पर्याय-पर्यायी में भेद करके वस्तु को ग्रहण करने वाला नय व्यवहारनय कहलाता है।⁹

- **निर्वाण प्राप्त करने की पात्रता** - शुद्ध रत्नत्रय की साधना से अष्ट कर्मों की आत्यंतिकी निवृत्ति द्रव्यमोक्ष है और रागादि भावों की निवृत्ति भावमोक्ष है। मनुष्य गति से ही जीव को मोक्ष होना संभव है। आयु के अंत में उसका शरीर कपूरवत् उड़ जाता है और वह स्वाभाविक ऊर्ध्व गति के कारण लोकशिखर पर जा विराजते हैं, जहाँ वह अनंतकाल तक अनंत अतींद्रिय सुख का उपभोग करते हुए अपने चरम शरीर के आकार रूप से स्थित रहते हैं और पुनः शरीर धारण करके जन्म-मरण के चक्कर में कभी नहीं पड़ते। ज्ञान ही उनका शरीर होता है। जैन दर्शनकार उसके प्रदेशों की सर्व व्यापकता स्वीकार नहीं करते हैं, न ही उसे निर्गुण व शून्य मानते हैं। उसके स्वभावभूत अनंतज्ञान आदि आठ प्रसिद्ध गुण हैं। जितने जीव मुक्त हाते हैं उतने ही निगोद राशि से निकलकर व्यवहार राशि में आ जाते हैं, इससे लोक जीवों से रिक्त नहीं होता।¹⁰

परमदुग्धि दु अठिदो जो कुणदि तवं वदं च धारेदि।

तं सव्वं बालतवं बालवदं बेति सव्वण्हू॥159॥

वदणियमाणि धरंता सीलाणि तहा तवं च कुव्वंता।

परमदुग्धाहिरा जे णिव्वाणं ते ण विंदंति॥160॥¹¹

पदार्थ तीन कोटियों में विभाजित हैं—या तो वे अर्थात्मक अर्थात् वस्तुरूप हैं, या शब्दात्मक अर्थात् वाचकरूप हैं⁹ और या ज्ञानात्मक अर्थात् प्रतिभास रूप हैं। अतः उन-उनको विषय करने के कारण नय ज्ञान व नय वाक्य भी तीन प्रकार के हैं—अर्थनय, शब्दनय व ज्ञाननय। मुख्य गौण विवक्षा के कारण वक्ता के अभिप्राय भी अनेक प्रकार के होते हैं, जिससे नय भी अनेक प्रकार के हैं। वस्तु के सामान्यांश अर्थात् द्रव्य को विषय करने वाला नय द्रव्यार्थिक और उसके विशेषांश अर्थात् पर्याय को विषय करने वाला नय पर्यायार्थिक होता है। इन दो मूल भेदों के भी आगे अनेकों उत्तरभेद हो जाते हैं। इसी प्रकार वस्तु के अंतरंग रूप या स्वभाव को विषय करने वाला निश्चय और उसके बाह्य या संयोगी रूप को विषय करने वाला नय व्यवहार कहलाता है अथवा गुण-गुणी में अभेद को विषय करने वाला निश्चय और उनमें कथंचित् भेद को विषय करने वाला व्यवहार कहलाता है। तथा इसी प्रकार अन्य भेद-प्रभेदों का यह नयचक्र उतना ही जटिल है जितनी कि उसकी विषयभूत वस्तु। उस सबका परिचय इस अधिकार में दिया जायेगा।

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोष भाग -3/नय प्रकरण

⁹ आलापपद्धति/216

¹⁰ जैनेन्द्र सिद्धान्त कोष भाग-4/मोक्ष

¹¹ समयसार/159-160

अर्थात् -ज्ञान स्वरूप आत्मा में अस्थित जो तप करता है और व्रत को धारण करता है उस सब तप व्रत को सर्वज्ञदेव अज्ञान तप और अज्ञान व्रत कहते हैं। व्रत और नियमों को धारण करते हुए तथा शील और तप को करते हुए भी जो परमार्थभूत ज्ञान-स्वरूप आत्मा से बाह्य है ये मोक्ष को नहीं पाते।

❖ **मुणिणो पावन्ति णिव्वाणं की व्याख्या** - आचार्यश्री कुन्दकुन्द स्वामी द्वारा ग्रन्थाधिराज समयसारजी की गाथा क्रमांक 158 एवं गाथा क्रमांक 290 में **मुणिणो पावन्ति णिव्वाणं** की व्याख्या की गई है।

■ **प्रथम गाथा -**

परमट्टो खलु समओ सुद्धो जो केवली मुणी णाणी।

तम्हि ट्ठिदा सहावे मुणिणो पावन्ति णिव्वाणं।¹²

निश्चय से जो शुद्ध है, केवली है, मुनि है, ज्ञानी है, परमार्थ है, समय है, उस स्वभाव में स्थित मुनि मोक्ष को प्राप्त करते हैं।

समयसार ग्रन्थ आध्यात्मिक ग्रन्थ है। निश्चय की दृष्टिकोण से प्रमुखता लिखा गया है। यह ग्रन्थ मुनियों की दृष्टि से लिखा गया है। यहां मुणिणो शब्द का प्रयोग किया गया। जिसका तात्पर्य है कि निर्वाण प्राप्त मुनिराज ही प्राप्त कर सकते हैं। आत्मस्वभाव में स्थित शुद्धोपयोगी मुनिराज ही होते हैं और वे ही निर्वाण करते हैं। चतुर्थ गुणस्थान में मोक्षप्राप्ति असंभव है क्योंकि चतुर्थ गुणस्थान में मुनि महाराज नहीं होते हैं अतः इस प्रकार से कथन करना दूषित है कि चतुर्थ गुणस्थान में शुद्धोपयोग होता है क्योंकि शुद्धोपयोग दिगम्बर मुनिराज महाराजों को ही होगा और दिगम्बरत्व छटवें गुणस्थान से प्रारंभ होगा। अतः यह सुस्पष्ट है कि जो भावलिंगी मुनिराज है शुद्धोपयोगी है वे ही निर्वाण को प्राप्त करते हैं।

शुद्ध अर्थात् जो रागादि विभाव है जो भाव कर्म है वे शुद्ध हैं। जीव के तो भाव कर्म ही होते हैं। इन विभाव भावों के कारण ज्ञानावरणादि बंधते हैं। इन द्रव्य कर्मों के साथ ही नोकर्म रागद्वेष आदि बंधते हैं। केवलि अर्थात् अन्य पर पदार्थों से कोई सहारा नहीं लेते हैं। ज्ञानी की अपेक्षा से जिन्हें अपने आत्मा का ज्ञान प्रत्यक्ष रूप से ज्ञान प्राप्त हो गया है। यहां ज्ञानी का प्रकृत अर्थ सम्यग्ज्ञानी से नहीं है। यहां पर जिन्होंने अपने आत्म स्वरूप को प्रत्यक्ष रूप से जान लिया है वे ही ज्ञानी हैं।

¹² समयसार/158

जो स्वभाव में रत श्रमण है ऐसे शुद्धोपयोगी, भेदविज्ञानी, पुण्य-पाप दोनों प्रकार की क्रियाओं को समान मानकर जीते हैं, जो परमार्थ से बाहर व्रत-संयम-शील को धारण करते हैं उनका व्रत-तप-शील बाल है, वे सब अज्ञानी हैं। समयसार ग्रन्थ में ज्ञानी और अज्ञानी का स्वरूप के विषय में बहुत विस्तार से चर्चा की गई है। ज्ञानी अर्थात् जो निर्विकल्पक समाधि में लीन है, जो निर्विकल्पक समाधि से बाहर है वह अज्ञानी है। समयसार का सम्यग्दर्शन निश्चय सम्यग्दर्शन ही सम्यग्दर्शन है। सामान्यतः सम्यग्दृष्टि को ज्ञानी और मिथ्यादृष्टि को अज्ञानी कहते हैं परंतु समयसार के अनुसार सम्यग्दर्शन इससे बिल्कुल अलग है।

**जो चत्तारि वि पाए छिंदि ते कम्मबंधमोहकरे।
सो णिस्संको चेदा सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो।।244।।¹³**

जो कर्मबंध संबंधी मोह करने वाले मिथ्यात्वादि भावरूप चारों भेदों को छेदता है उस निःशंक चेतयिता को सम्यग्दृष्टि जानो।

निर्विकल्प समाधि में लीन, जिन्हें केवलज्ञान होना है, ऐसे साधक ही इन सब पादों को छेदने वाले सम्यग्दृष्टि हो सकते हैं। एक परमाणु बराबर वाला राग होने पर भी सम्यग्दृष्टि नहीं हो सकता है चाहे वह श्रुतकेवली ही क्यों न हो ? इसलिए आचार्यश्री कुन्दकुन्द स्वामी ने समयसार में ऐसा कहा है। जब समयसार के अनुसार बात करेंगे तो सामान्य लोगों का कथन नहीं है। परमार्थ शुद्ध समय केवली मुनि ज्ञानी ये सब एकार्थक है। इसमें लीन श्रमण निर्वाण को प्राप्त करते हैं शुद्धोपयोग ही परमार्थ है जो शुद्धोपयोग से बाहर उनके व्रतादि बाल है। ये सब परमार्थ से बाहर होने के कारण अज्ञानी है।

जो परमार्थ का आश्रय लेते हैं वे ही यतिजन कर्म का क्षय करते हैं। इस गाथा का एक अर्थ और है -परमार्थका एक अर्थआगम भी है अर्थात् जो आगम का आश्रय लेते हैं वे कर्मों का क्षय करते हैं।¹⁴

- **ज्ञान की मोक्षहेतुता**— ज्ञान ही मोक्ष का कारण है, क्योंकि ज्ञान न तो पुण्य बंध का कारण है, न शुभ कर्म का कारण है, न अशुभ कर्म का कारण है, न पापबंध का कारण है। इसलिए ज्ञान में ही मोक्ष की

¹³ समयसार 244

¹⁴ 1. यूट्यूब चैनल - Muni Pramansagar Ji समयसार गाथा-158| स्वाध्याय | 15 Sept 2022 | - प्रवचनांश - <https://www.youtube.com/watch?v=aav09hjRSYs&list=PLc8vxYI0di8DpzDSuExsA7g9ERNstMtII&index=30>

2. यूट्यूब चैनल - Muni Pramansagar Ji समयसार गाथा-158| स्वाध्याय | 17 Sept 2022 | - प्रारंभ के एक मिनट का प्रवचनांश<https://www.youtube.com/watch?v=KmXeR9jdB8U&list=PLc8vxYI0di8DpzDSuExsA7g9ERNstMtII&index=31>

कारणता सिद्ध होती है। जितना भी बंधन लगा है जीव को वह रागद्वेष और मोह के कारण लगा है और ज्ञान के कारण रूप परिणमन अर्थात् समस्त पदार्थों के ज्ञाता द्रष्टा रहने में रागद्वेष मोह होता नहीं है, इस कारण ज्ञान परिणमन में बंध नहीं बताया, मोक्ष ही होता है। यह ज्ञानपरिणमन समस्त कर्मों की जाति से जुदा है। रागादिक विभाव भी जात्यंतर हैं और ज्ञानावरणादिक कर्म तो जात्यंतर हैं ही। और यह परमात्मतत्त्व चैतन्य जातिरूप है।

- **अंतर्बाह्य मल के अभाव में स्वच्छता**—जैसे साफ सुंदर चौकी हो उस चौकी पर बहुत से धब्बा लगे हों चिड़िया के वीट के अथवा स्याही के धूल के बहुत धब्बे लगे हुए हों और दोपहर की धूप में रखी हो सो गर्म भी काफी हो गई, उस समय इस चौकी में दो तरह का मल आ गया। एक तो मल आया है गर्मी का। चौकी के स्वभाव में ऐसी गर्मी नहीं है। वह तो धूप का संयोग पाकर इसमें गर्मी आई है और एक दोष है इस पर धब्बा लगने का। इसी प्रकार आत्मा में दो दोष आते हैं, एक तो गर्मी के मानिंद रागद्वेष मोह भाव होने का और एक धब्बे के मानिंद ज्ञानावरणादिक कर्मों के लगने का। इन दोनों दोषों में ज्ञानावरणादिक कर्म तो प्रकट जात्यंतर हैं। जीव की चैतन्य जाति है और कर्मों की पुद्गल जाति है। किंतु जो रागद्वेष मोह का दोष आया है वह भी जात्यंतर है। रागद्वेष तो जड़ हैं, वे जानने वाले नहीं हैं। जानने वाला तो ज्ञान है। तो एक चैतन्य भाव ही चेतन की जाति का है। ये रागद्वेष भाव मोक्ष के हेतु न होंगे। मोक्ष का हेतु तो ज्ञानभाव ही है। चाहे चैतन्य-स्वरूप कहो, चाहे परमार्थ आत्मा कहो, एक ही बात है।
- **आत्मा के समय नाम की सार्थकता**— इस ही का नाम समय है अर्थात् एक साथ एक भाव रूप से परिणत होने वाले ज्ञान में सम्यक्त्व होता है। इसलिए इस आत्मा का ही नाम समय है। सम एकत्वेन अयते गच्छति इति समयः। जो एक रूप से गमन करे उसको समय कहते हैं। देखो लोगों ने इन घड़ी घंटों का नाम समय रख लिया, मिनट सैकंडों का नाम समय रख लिया, क्योंकि यह समय भी एक रूप से गमन करता है। कोई कहता है कि आजकल पंचमकाल है इस वजह से मोक्ष नहीं होता। तो क्या काल का परिणमन जो समय है उसमें कोई दोष आ गया कि जिससे मोक्ष नहीं होता। समय होता तो सब एक रूप है। चाहे चौथा काल हो, चाहे किसी काल का समय हो। समय की ओर से तो सब समय एक समान हैं पर जिस काल में मनुष्य हीन योग्यता के हों, हीन संहनन के हों, हीन बल बुद्धि के हों तो दोष तो है इस पुरुष का और नाम लगता है समय का कि पंचम काल है सो मोक्ष नहीं होता। तो अपराध है मनुष्य का, पर अपराध लगा समय पर। तो समय भी एक रूप से गमन करता है। जब देखा जाता कि समय एक रूप से गमन करता है इसी प्रकार यह आत्मा भी अपने शुद्ध कार्यों में एक रूप से गमन करता है। इस आत्मा का शुद्ध कार्य है जानन ज्ञाता-द्रष्टा रहना मात्र। उसमें एक रूप से ही इस आत्मा का गमन है इसलिए इसको समय कहते हैं।

आचार्यश्री कुन्दकुन्द स्वामी ने शुद्ध, केवली, मुनि, ज्ञानी, परमार्थ, समय इस संज्ञा से मुनि को अभिहित किया है। यहां प्रत्येक शब्द एकार्थवाची है परंतु यह अपने आप बहुत बड़े अर्थ को देने वाला है। यहाँ आगे एक शब्द की सार्थकता पर चर्चा करते हैं।

- **आत्मा के परमार्थ नाम की सार्थकता**— यह आत्मा परमार्थ है, यह तो पहिला विशेषण है। परमार्थ उसे कहते हैं जो समस्त कर्मादिक जात्यंतर से जुदा रहता हो और मात्र चैतन्य जाति स्वरूप हो उसको कहते हैं परमार्थ। सो यह परमार्थ आत्मा ही है। यह आत्मा अपने स्वरूप से समस्त परद्रव्यों से और परभावों से जुदा स्वच्छ ज्ञानज्योतिमात्र है। जिसकी चर्चा की जा रही है, ध्यान से सुनिये—अपने आपमें बसे हुए आत्मस्वरूप की चर्चा की जा रही है। जिस आत्मा को जान लेने पर यह निश्चय हो जाता है कि मैं न पुरुष हूँ और न स्त्री हूँ। जो पुरुष है वह अपने को पुरुषपने से मना कर सके, इतना ज्ञान जगे तो समझ लो कि मोक्ष का मार्ग मिला। जो स्त्री जाति में हैं वे अपने को स्त्रीपन से मना कर सकें कि मैं स्त्री नहीं हूँ ऐसा दृढ़ निर्णय कर लें तो समझें कि अब वह धर्माद्रष्टा आत्मा है। जब यह निर्णय हुआ कि मैं पुरुष नहीं हूँ, मैं स्त्री नहीं हूँ तब अंतर में विराजमान इस परमात्मस्वरूप को देख सका यह तो केवल ज्ञानप्रकाशमात्र है। इसमें हाथ, पैर, हड्डी, चमड़ी नहीं, कोई पिंड नहीं। यह आत्मा तो आकाश की तरह अमूर्त निर्लेप ज्ञानज्योतिमात्र है। वह तुम हो, यह मैं हूँ। तो यह आत्मा क्या स्त्री है अथवा क्या पुरुष है? निर्णय करो अपने आप में। इन इंद्रियों को संकोच कर आँखों को बंद कर सबकी दृष्टियां छोड़कर अंतर में देखो जरा— यह मैं आत्मा ज्ञान ज्योतिमात्र हूँ, इसके तो शरीर ही नहीं है फिर पुरुष और स्त्रीपना होगा ही क्या? यह आत्मा अपने शुद्ध कार्यों में एक रूप से गमन करता है। यह दूसरा विशेषण परमात्मस्वभाव का दिया गया है।
- **आत्मा के शुद्ध नाम की सार्थकता**— अब तीसरा विशेषण देखिये। यह शुद्ध है। आज की चर्चा कुछ कठिन लग रही होगी, पर यह चर्चा तुम्हारी ही है, दूसरे की नहीं है। तुम्हारी बात तुम्हें कठिन लगे, यह तो खेद की बात होना चाहिए। और वह घर गृहस्थ कुटुंब परिवार और वह दाल, चावल जो तुम्हारी चीजें नहीं हैं वे तुम्हें सरल लगती हैं इसका तो खेद होना चाहिए। तुम्हारे ही अंतर के पते की बात कही जा रही है। हे आत्मन् ! तू शुद्ध है। कैसा शुद्ध है? केवल ज्ञानप्रकाश मात्र है। इसमें इसका कारण न कोई तरंग है, न कोई रंग है। विकल्प उठते हैं, विचार चलते हैं, चिंताएं होती हैं, इष्ट-अनिष्ट भाव होता है। यह सब तू नहीं है। ये औपाधिक भाव तेरे नहीं हैं, मायाचार तेरे सत्त्व की कला नहीं है। तू शुद्ध ज्ञानमात्र है। तू समस्त नय पक्षों के मेल से रहित है। तू एक ज्ञानमात्र है, तू शुद्ध है। ऐसी शुद्धता को देखोगे तो समझ लो कि धर्म किया। और ऐसा शुद्ध परमार्थ परमात्मतत्त्व दृष्टि में न हो, केवल मूर्ति ही नजर आए, केवल मंदिर ही नजर आए, केवल आने-जाने वाले लोग ही दृष्टि में आएँ तो तू अभी

धर्म में नहीं लग रहा है । धर्म में तो तब दृष्टि है जब मंदिर आने जाने वाले लोग सब भूल जायें और एक ज्ञानमूर्ति जानें यह आत्मा के सही पते की बात कही जा रही है । तू शुद्ध है ।

- **आत्मा के केवली नाम की सार्थकता—** चौथा विशेषण कहते हैं कि हे आत्मन ! तू केवली है तू केवल है, प्यौर (Pure) है, खालिस है । जिसमें न दूसरे पदार्थों का संबंध है और न दूसरे पदार्थों का निमित्त पाकर कोई तरंग या रंग होने का स्वभाव है । केवल चैतन्यमात्र वस्तु है । पानी मिले हुए दूध को आप समझ जाते हैं कि इसमें इतना दूध है और इतना पानी है । इतनी कला तो है ना आप पर । जब दूध खरीदते हो तो देखकर बता देते हो कि इसमें तो आधा दूध है और आधा पानी है । इस जानने में तो आपकी कला है ना । इसी तरह मिले हुए आत्मस्वभाव में राग-द्वेष विभावों में यह विभाव है, यह स्वभाव है यह कला जिसके जग जाती है उसे धर्मात्मा कहते हैं । धर्म कितनी गहरी चीज है । और इसे समझने वाले जगत में कितने हैं ? धर्मात्मा का टाइटिल तो लाखों को लगा होगा । कोई साधुओं के पास ज्यादा बैठता हो, मंदिर में ज्यादा रहता हो, कोई लोगों के उपहार के लिए लाखों का धन खर्च करता हो, कोई मंदिर, धर्मशाला वगैरह बनवा देता हो, तो इतने मात्र से लोकव्यवहार में धर्मात्मा का टाइटिल मिल जाता है पर आचार्य महोदय यहाँ कह रहे हैं कि जिसने परमार्थ से शुद्ध, केवल का परिचय पाया है वह धर्मात्मा है ।
- **शुभोपयोग की अपने स्थान में कार्यकारिता—** भैया ! जगत के जीव अनंतकाल से विषय कषायों के संस्कार में पड़े हुए हैं । अच्छा है कि किन्हीं पुरुषों को गुरुओं के साथ रहने का, मंदिर में पूजा पाठ करने का, दूसरों के उपकार में द्रव्य खर्च करने का भाव हो जाये तो भला है, मगर यह उतना भला है जितना कि 104 डिग्री बुखार के बाद 100 डिग्री बुखार रह जाये तो 100 डिग्री का बुखार रह जाना भला है । 104 डिग्री के ज्वर की पीड़ा, वेदना नहीं रही इस कारण वह 100 डिग्री टेंपरेचर भला है । पर क्या वस्तुतः 100 डिग्री के टेंपरेचर वाले को हम निरोगी कह सकते हैं ? नहीं । बड़ी सावधानी रखनी पड़ेगी, नहीं तो 100 डिग्री से फिर अधिक बढ़ जायेगा, फिर आफत पड़ जायेगी । इसी प्रकार उन तीव्र विषय कषायों के भावों के मुकाबले में गुरुसंग, भगवत्भक्ति, परोपकार, जीव दया — ये भले हैं किंतु इनसे भी सावधानी रखनी पड़ेगी । क्योंकि यह अस्थिरता की वृत्ति है, औपाधिक भाव हैं । वहाँ यह पता नहीं पड़ता है कि ऊंट किस करवट बैठेगा ? कदाचित कोई ऐसी धुन घर कर भी इस कहलाए गए धर्मात्मापन से चिगकर महापाप में लग सकता है । अभी इस आत्मा को धर्मात्मा नहीं कहा जा सकता । धर्मात्मा वह है जिसको अपने धर्म का, स्वभाव का परिचय हुआ । यह आत्मस्वभाव कैवल्य है ।
- **आत्मा के मुनि नाम की सार्थकता—** इस प्रकार चौथा विशेषण कहने के बाद 5वां विशेषण कहा जा रहा है कि आत्मा मुनि है अर्थात् मनन मात्र भावमय है यह । आत्मा कर क्या रहा है अंतरंग में पड़ा हुआ ? मनन कर रहा है, अपने ज्ञानादिक गुणों का अनुभवन कर रहा है और शुद्ध रूप में तो यह आत्मा

चैतन्य प्रतिभास मात्र परिणमन कर रहा है और उस ही परिणमन को आत्मरूप समझकर तृप्त और आनंदमग्न हो रहा है। इस कारण मननमात्र भाव होने कारण इस आत्मा को मुनि कहा गया है।

- **आत्मा के ज्ञानी नाम की सार्थकता—** अब छठा विशेषण कहते हैं कि यह आत्मा ज्ञानी है। यह स्वयमेव ज्ञानस्वरूप है। ज्ञानातिरिक्त इस आत्मा में क्या भाव जान सकते हैं? भेददृष्टि से चाहे ज्ञान कह दो, चाहे ज्ञानी कह दो, चाहे आत्मा कह दो, सब एक पर्यायवाचक शब्द हैं। जो जाननभाव है वह ही आत्मा है। अपने को जाननभाव के रूप में निहारिये। इसरूप में अपना अनुभवन न कर सके तो नाना भावरूप अनुभवते हैं तो वह नागनाथ और सांपनाथ जैसा कहने भर का अंतर है। स्वभाव से तो चिगे हुए हैं।
- **आत्मा की ज्ञान स्वभावता—** यह आत्मा ज्ञानी है, ज्ञान को लिए हुए है और वह ज्ञान जिसके पास हो उसे ज्ञानी कहते हैं ऐसा अर्थ यहाँ नहीं लेना। यह अर्थ एक सिद्धांत में कहा जरूर गया है कि आत्मा का स्वरूप मात्र जानना है। उसमें जब ज्ञान का संबंध होता है तो उसे ज्ञानी कहते हैं, पर आत्मा के ज्ञानी होने की यह पद्धति नहीं है। आत्मा स्वयं ज्ञानस्वरूप है। इस कारण उसे ज्ञानी कहते हैं। यहाँ मोक्ष का हेतु बतलाया जा रहा है कि मोक्ष का हेतु कौन है? हम किसकी शरण जायें, किसका आलंबन लें, किसकी कृपा पायें, किसकी दृष्टि करें कि हम संसार के सब संकटों से दूर हो सकें, वह प्रभु है यह ज्ञानस्वभाव।
- **आत्मा की स्वस्वभावमात्रता—** यह अपने स्वभावमात्र है। इसको स्व स्वभाव कहते हैं। अर्थात् स्व होना मात्र ही यह आत्मा है। स्व है चित्। सो चैतन्य का होना मात्र ही यह आत्मा है। यह आत्मस्वभाव या प्रभु का दरबार कुछ कहिए, यहाँ पहुँचने पर एक अलौकिक स्थिति में पहुँच जाते हैं। जहाँ सर्व विलक्षण ही दर्शन का अनुभवन हुआ करता है। तो इस प्रकार आत्मा का हेतुभूत जो ज्ञानभाव है उस ज्ञानभाव को विशेषणों द्वारा देखो। किसी भी विशेष्य को समझने के लिए विशेषण सहायक होते हैं। यह आपकी खुद की बात कही जा रही है। आपके महल की बात कहें तो वह आपकी बात नहीं है, वह जड़ पुद्गल की बात है। आपके शरीर की बात कहें तो वह आपकी निजी बात नहीं है वह जड़ पुद्गल की बात है, आपके धन के उपयोग सेवा भाव की बात कहें तो यह भी आपकी निजी बात नहीं है। यह तो चिदाभासों की बात है, घर की बात है। आपके अनादि अनंत अहेतुक अशरण चैतन्यभाव की महिमा गायें तो यह आपकी बात है। यह बात केवल आपकी ही न रहेगी, यह सर्व जीवों की बात है। और जैसे जिस विशेषण के द्वारा हम अपनी बात समझ सकते हैं वह विशेषण सर्व जीवों में निमग्न हो गया है। इस कारण इन जीवों से अलग कुछ नहीं है। यह स्व लक्षण की बात कही जा रही है। आनंद के अनुभव के लिए तो आप सब जुदा हैं, मगर जिस स्वलक्षण से जीव का परिज्ञान होता है उस स्वलक्षण की दृष्टि में हम और आप अपनी जुदी सीमा नहीं बना पाते। इसी कारण उस अद्वैतवाद ने

सब एक ब्रह्म स्वरूप मान लिया । स्याद्वाद भी इसका लक्ष्य कराता है पर वह अपनी पद्धति से ही कराता है । यह आत्मा स्वस्वभावमात्र है ।

- **आत्मा के कथित विशेषणों का उपसंहार—** यह आत्मा परमार्थ है क्योंकि समस्त परद्रव्यों और परभावों से रहित उत्कृष्ट स्वरूप वाला है । यह आत्मा समय है क्योंकि एकसाथ एक रूप से ज्ञान में गमन करता है । यह आत्मा अपनी ओर से भिन्न-भिन्न रूपों से ज्ञान नहीं किया करता है, वह आश्रयभेद, उपाधिभेद से भिन्न-भिन्न ज्ञान होता है, पर यह तो स्वरसतः एक स्वरूप ही ज्ञान में चलता है, सबसे न्यारा है केवल है, मनन को लिए हुए है, ज्ञानानन्दमय है, अपने भावों की भावना मात्र हैं ऐसे आत्मस्वरूप में पहुंच हो जाये जहाँ कि वे साधुजन निर्वाण को प्राप्त करते हैं । निर्वाण मायने कैवल्य, खालिस रह जाना । खालिस रह जाना तो कोई चाहे और वह निरपेक्ष सत्त्व की भावना न करे तो वह खालिस कैसे बन सकता है ? कैवल्य बनना हो तो अपने को केवल निहारने लगे, केवल बन जावोगे । और यदि निहारो द्वैत को, सर्व मायामय पिंडों को, एक दूसरे के संबंध को और चाहो कि हम केवल बन जायें तो नहीं बना जा सकता है । केवल बनने का उपाय कैवल्य को शुद्ध आत्मतत्त्व को देखना है।¹⁵

इस प्रकार जब यह प्रश्न किया गया था कि पुण्य और पाप कर्म तुम तो इन दोनों को हेय बता रहे हो, यह मोक्ष के कारण नहीं हैं, तो फिर मोक्ष का कारण है क्या ? इसके उत्तर में यह गाथा आई है कि मोक्ष का कारण तो एक ज्ञानस्वभाव है, कैवल्य है, उसकी ही दृष्टि से, आलंबन से धर्म होता है और उसकी वृद्धि हो होकर केवलज्ञान होता है । अब इस ही ज्ञान को उसके प्रतिपक्ष रूप से बतलाते हैं।

■ दूसरी गाथा -

एवं व्यवहारणो पडिसिद्धो जाण णिच्छयणएण ।

णिच्छयणयासिदा पुण मुणिणो पावंति णिव्वाणं ।।290 ।।

अर्थात् इस प्रकार व्यवहार नय निश्चयनय के द्वारा निषिद्ध जानो तथा निश्चयनय के आश्रित मुनिराज निर्वाण को प्राप्त होते हैं।

सविकल्प रूप जो व्यवहार नय वह निश्चय नय के द्वारा प्रतिषेध को प्राप्त होता है । अर्थात् प्रवृत्ति और निवृत्ति का भेद है । प्रवृत्ति निवृत्ति को प्रतिषेध करते हैं।

¹⁵ वर्णी पूर्वचन समयसार गाथा 151

जिस प्रकार से फल की प्राप्ति के लिए फूल की आवश्यक है अर्थात् फूल के बिना फल नहीं है उसी प्रकार से व्यवहार के बिना निश्चय नहीं होता है। मोक्ष तो निश्चय से ही होगा। व्यवहार से ही निश्चय तक पहुँचने का मार्ग है। जिस प्रकार जब हवाईजहाज रनवे पर दौड़ता है फिर वह उड़ान भरता है। रनवे पर बिना दौड़े सीधे ही उड़ान ही नहीं भरता है। उसी प्रकार से रनवे पर जो दौड़ना है वह व्यवहार है और जो उड़ान भरना है वह निश्चय है।

व्यवहार नय साधन है और निश्चय साध्य है। साधन के बिना साध्य नहीं होता है अर्थात् बिना व्यवहार के निश्चय नहीं होता है। कहा गया है -

**जीवोऽप्रविश्य व्यवहारमार्गं , न निश्चयं ज्ञातुमुपैति शक्तिम्।
प्रभाविकाशेक्षणमन्तरेण , भानूदयं को वदते विवेकी ॥¹⁶**

व्यवहार मार्ग में प्रवेश किये बिना जीव निश्चय मार्ग (अर्थात् अभेद रत्नत्रयभूत शुद्ध आत्मा) को जानने या अनुभव करने में समर्थ नहीं हो सकता। प्रभात होने से पहले सूर्य का उदित होना कौन विवेकी कह सकता है? पहले लालिमा आयेगी फिर सूर्य का प्रकाश होगा। अर्थात् पहले व्यवहार होगा फिर निश्चय होगा।

प्रारंभिक अवस्था में सविकल्पक अवस्था में व्यवहार नय प्रयोजनीय है लेकिन जो विशुद्ध ज्ञान दर्शन वाले शुद्धात्म ज्ञान वालों के लिए प्रयोजनीय नहीं है। जिस प्रकार छत पर जाने के लिए सीढ़ी का आलम्बन लेना पड़ता है उसी प्रकार से व्यवहार नय भी साधन रूप सीढ़ी है और निश्चयनय छत रूपी साध्य है।¹⁷

यहाँ ध्यान रखने योग्य विषय है - व्यवहार नय का निषेध तब किया जाता है जब वह निश्चय नय का आश्रय लिया जाता है। अर्थात् कोई मुनिराज रत्नत्रय का पालन करते हैं स्वाध्याय, प्रतिक्रमण, सामाधिक, प्रवचन दे रहे हैं उस समय वे व्यवहार नय के आश्रय से हैं, जैसे ही वे ध्यान में लीन हो जाते हैं, शुद्धोपयोग में डूब जाते हैं निश्चय नय का आश्रय लिया जाता है और व्यवहार नय का निषेध किया जाता है।¹⁸

¹⁶ आराधनासार/7/30

¹⁷ यूट्यूब चैनल - Muni Pramansagar Ji समयसार गाथा-290। स्वाध्याय | 19 Oct. 2022 | प्रवचनांश - <https://www.youtube.com/watch?v=9MWcf9bEMbc&list=PLc8vxYI0di8DpzDSuExsA7g9ERNstMtII&index=55&t=756s>

¹⁸ 1. यूट्यूब चैनल ashok jain kota से साभार - 73 SamaySar समयसार गाथा157,158 श्री रतनलालजी बैनाडा समय - 16.11 से 25.42 मिनट तक - https://www.youtube.com/watch?v=21H15uIc_c&list=PLAITxWgNq5S-VSsrDjHmGHZane8zn7-kn&index=73

जब मुनिराज अपनी शुद्ध अवस्था का का ध्यान कर रहे हैं अनुभूति कर रहे हैं, प्रतिक्रमण, स्वाध्याय, सामायिक विषकुम्भ है। उस समय कोई विकल्प नहीं होना चाहिए कि मुझे सामायिक करना चाहिए। उस समय वे उत्कृष्ट अवस्था को प्राप्त हैं। सामायिक व्रत उपवास आदि व्यवहार नय का आश्रय लेकर निश्चय नय में तल्लीन होना है। जब तक निश्चय में तल्लीन नहीं होते हैं तब तक व्यवहार नय का आश्रय लेना चाहिए।

निर्वाण वे ही मुनिराज प्राप्त करेंगे जो निश्चय नय के आश्रय में है, परंतु ऐसा नहीं कहा जा सकता है कि व्यवहार नय से मोक्ष नहीं हो सकता है। यहाँ कहने का तात्पर्य है कि व्यवहार मोक्षमार्ग साधन है जो निश्चय मोक्षमार्ग साध्य है। अतः साधन रूप व्यवहार नय मोक्षमार्ग है और साध्य रूप निश्चय नय रूप मोक्षमार्ग है।

- **उपसंहार** - जैन दर्शन ने आत्मतत्त्व के प्रति अत्यंत सजग है। आत्मविज्ञान वीतरागविज्ञान के लिए समस्त कार्य है। जबकि वर्तमान में जड़विज्ञान के अनुसंधान के लिए समस्त कार्य है। आत्मान्वेषण के लिए आचार्य भगवन् का कहना है कि इसका परम और श्रेष्ठ मार्ग व्रत-नियम-उपवास-सामायिक आदि के माध्यम से प्रारंभ होता है। जितनी जितनी प्रगाढ़ता आती जाती है उतने-उतने आगे बढ़ते जाते हैं। एकदेश पालन से ऊपर उठकर सर्वदेश पालन महाव्रतों का पालन प्रारंभ हो जाता है। तत्समय शुद्ध प्राकृतिक रूप नग्न दिगम्बर अवस्था प्राप्त होती है जहाँ इष्टानिष्ट पदार्थों का आर्त-रौद्र ध्यान का विकल्प समाप्त करके ध्यान-ध्येय-ध्याता का विकल्प होता है। यह विकल्प व्यवहार मोक्षमार्ग है। इसे भी निर्विकल्पक समाधि कहा गया है। जब मुनिराज ध्यान-ध्येय-ध्याता से भी ऊपर उठ जाता है तब वह परम पारमार्थिक शुद्ध अवस्था आत्मस्थ होकर निर्विकल्पक समाधि में लीन होकर अपने आत्मतत्त्व की प्राप्ति करता है। उपरोक्त लेख में, यह सुस्पष्ट हो जाता है कि निर्वाण प्राप्त करने के लिए मुनि होना आवश्यक है। बिना मुनि बने निर्वाण सम्भव नहीं है। निर्वाण वही मुनि प्राप्त कर सकता है जो निश्चय के आश्रय को प्राप्त हो और निश्चय का आश्रय व्यवहार के आश्रय के बल पर ही संभव है।

154, गीतांजलि ग्रीनसिटी,

संजय ड्राइव रोड़, सागर -470002

9329092390, aasheishjain@gmail.com

2. यूट्यूब चैनल ashok jain kota से साभार - 131 SamaySar समयसार गाथा289,290 श्री रतनलालजी बेनाडा
<https://www.youtube.com/watch?v=kMIL0U37SUQ&list=PLAITxWgNq5SVSsrDjHmGHZane8zn7-kn&index=131>

संदर्भ सूची -

¹ समयसार / आत्मख्याति/151

¹ चारित्रसार/46/5

¹ विशेष— निर्वाण शब्द का प्रयोग सांख्य, न्याय, वैशेषिक, योग, मीमांसा (पूर्व) और वेदांत में क्रमशः मोक्ष, अपवर्ग, निःश्रेयस, मुक्ति या स्वर्गप्राप्ति तथा कैवल्य शब्दों का व्यवहार हुआ है। जबकि जैन और बौद्ध दर्शन इस निर्वाण शब्द की विशेष व्याख्या की गई है। बोधिसत्व नागार्जुन ने माध्यमिक सूत्र में लिखा है कि 'भवसंतति का उच्छेद ही निर्वाण है, अर्थात् अपने संस्कारों द्वारा हम बार-बार जन्म के बंधन में पड़ते हैं इससे उनके उच्छेद द्वारा भवबंधन का नाश हो सकता है। रत्नकूटसूत्र में बुद्ध का यह वचन है: राग, द्वेष और मोह के क्षय से निर्वाण होता है। बज्रच्छेदिका में बुद्ध ने कहा है कि निर्वाण अनुपधि है, उसमें कोई संस्कार नहीं रह जाता। माध्यमिक सूत्रकार चंद्रकीर्ति ने निर्वाण के संबंध में कहा है कि सर्वप्रपंचनिवर्तक शून्यता को ही निर्वाण कहते हैं।

¹ नियमसार/179-181

¹ भगवती आराधना / विजयोदया टीका/11/53/20

¹ प्रवचनसार / तात्पर्यवृत्ति/6/8/9

¹ स.सि., 1/6/24

¹ अनंत धर्मात्मक होने के कारण वस्तु बड़ी जटिल है। उसको जाना जा सकता है, पर कहा नहीं जा सकता। उसे कहने के लिए वस्तु का विश्लेषण करके एक-एक धर्म द्वारा क्रम पूर्वक उसका निरूपण करने के अतिरिक्त अन्य उपाय नहीं हैं। कौन धर्म को पहले और कौन को पीछे कहा जाये यह भी कोई नियम नहीं है। यथा अवसर ज्ञानी वक्ता स्वयं किसी एक धर्म को मुख्य करके उसका कथन करता है। उस समय उसकी दृष्टि में अन्य धर्म गौण होते हैं पर निषिद्ध नहीं। कोई एक निष्पक्ष श्रोता उस प्ररूपणा को क्रम-पूर्वक सुनता हुआ अंत में वस्तु के यथार्थ अखंड पर्यायार्थिक नय सामान्य निर्देश व्यापकरूप को ग्रहण कर लेता है। अतः गुरु-शिष्य के मध्य यह न्याय अत्यंत उपकारी है। अतः इस न्याय को सिद्धांत रूप से अपनाया जाना न्याय संगत है। यह न्याय श्रोता को वस्तु के निकट ले जाने के कारण 'नयतीति नयः' के अनुसार नय कहलाता है। अथवा वक्ता के अभिप्राय को या वस्तु के एकांश ग्राही ज्ञान को नय कहते हैं। संपूर्ण वस्तु के ज्ञान को प्रमाण तथा उसके अंश को नय कहते हैं।

अनेक धर्मों को युगपत् ग्रहण करने के कारण प्रमाण अनेकांत रूप व सकलादेशी है, तथा एक धर्म के ग्रहण करने के कारण नय एकांत रूप व विकलादेशी है। प्रमाण ज्ञान की अर्थात् अन्य धर्मों की अपेक्षा को बुद्धि में सुरक्षित रखते हुए प्रयोग किया जाने वाला नय ज्ञान या नय वाक्य सम्यक् है और उनकी अपेक्षा को छोड़कर उतनी मात्र ही वस्तु को जानने वाला नय ज्ञान या नय वाक्य मिथ्या है। वक्ता या श्रोता को इस प्रकार की एकांत हठ या पक्षपात करना योग्य नहीं, क्योंकि वस्तु उतनी मात्र है ही नहीं। यद्यपि वस्तु का व्यापक यथार्थ रूप नयज्ञान का विषय न होने के कारण नयज्ञान का ग्रहण ठीक नहीं, परंतु प्रारंभिक अवस्था में उसका आश्रय परमोपकारी होने कारण वह उपादेय है। फिर भी नय का पक्ष करके विवाद करना योग्य नहीं है। समन्वय की दृष्टि से काम लेना ही नयज्ञान की उपयोगिता है।

पदार्थ तीन कोटियों में विभाजित हैं—या तो वे अर्थात्मक अर्थात् वस्तुरूप हैं, या शब्दात्मक अर्थात् वाचकरूप हैं¹ और या ज्ञानात्मक अर्थात् प्रतिभास रूप हैं। अतः उन-उनको विषय करने के कारण नय ज्ञान व नय वाक्य भी तीन प्रकार के हैं—अर्थनय, शब्दनय व ज्ञाननय। मुख्य गौण विवक्षा के कारण वक्ता के अभिप्राय भी अनेक प्रकार के होते हैं, जिससे नय भी अनेक प्रकार के हैं। वस्तु के सामान्यांश अर्थात् द्रव्य को विषय करने वाला नय द्रव्यार्थिक और उसके विशेषांश अर्थात् पर्याय को विषय करने वाला नय पर्यायार्थिक होता है। इन दो मूल भेदों के भी आगे अनेकों उत्तरभेद हो जाते हैं। इसी प्रकार वस्तु के अंतरंग रूप या स्वभाव को विषय करने वाला निश्चय और उसके बाह्य या संयोगी रूप को विषय करने वाला नय व्यवहार कहलाता है अथवा गुण-गुणी में अभेद को विषय करने वाला निश्चय और उनमें कथंचित् भेद को विषय करने वाला व्यवहार कहलाता है। तथा इसी प्रकार अन्य भेद-प्रभेदों का यह नयचक्र उतना ही जटिल है जितनी कि उसकी विषयभूत वस्तु। उस सबका परिचय इस अधिकार में दिया जायेगा।

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोष भाग -3/नय प्रकरण

¹ आलापपद्धति/216

¹ जैनेन्द्र सिद्धान्त कोष भाग-4/मोक्ष

¹ समयसार/159-160

¹ समयसार/158

¹ समयसार 244

- ¹ 1. यूट्यूब चैनल - Muni Pramansagar JI समयसार गाथा-158। स्वाध्याय | 15 Sept 2022 | - प्रवचनांश - <https://www.youtube.com/watch?v=aav09hjRSYs&list=PLc8vxYI0di8DpzDSuExsA7g9ERNstMtII&index=30>
2. यूट्यूब चैनल - Muni Pramansagar JI समयसार गाथा-158। स्वाध्याय | 17 Sept 2022 | - प्रारंभ के एक मिनट का प्रवचनांश <https://www.youtube.com/watch?v=KmXeR9jdB8U&list=PLc8vxYI0di8DpzDSuExsA7g9ERNstMtII&index=31>
- ¹ वर्णी प्रवचन समयसार गाथा 151
- ¹ आराधनासार/7/30
- ¹ यूट्यूब चैनल - Muni Pramansagar JI समयसार गाथा-290। स्वाध्याय | 19 Oct. 2022 | प्रवचनांश - <https://www.youtube.com/watch?v=9MWcf9bEMbc&list=PLc8vxYI0di8DpzDSuExsA7g9ERNstMtII&index=55&t=756s>
- ¹ 1. यूट्यूब चैनल ashok jain kota से साभार - 73 SamaySar समयसार गाथा 157,158 श्री रतनलालजी बेनाडा समय - 16.11 से 25.42 मिनट तक - https://www.youtube.com/watch?v=21H15uIc_c&list=PLAITxWgNq5S-VSsrDjHmGHZAne8zn7-kn&index=73
2. यूट्यूब चैनल ashok jain kota से साभार - 131 SamaySar समयसार गाथा 289,290 श्री रतनलालजी बेनाडा <https://www.youtube.com/watch?v=kMIL0U37SUQ&list=PLAITxWgNq5SVSsrDjHmGHZAne8zn7-kn&index=131>